International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

# लोकतंत्र के दृष्टिकोण एवम विभिन्न आयाम

कुँवर भास्कर परिहार
एम.ए. राजनीति विज्ञान
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

लोकतंत्र एक आध्यात्मिक आदर्श है। यह एक संगठन तथा जीवन–मार्ग है जहां व्यक्तित्व तथा मानवता का पूर्ण विकास सम्भव है।'' इसके समस्त समर्थकों ने मनुष्य और उसके अधिकार को केन्द्र मान कर ही अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार, लोकतंत्र की अवधारणा व्यापक है जिसमें इसे शासनतंत्र के स्वरूप, राज्य के रूप में एक व्यवस्था, समाज के विशाल रूप, नैतिक प्रारूप, आर्थिक आधारशिला, जीवन की महती परिपाटी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण लोकतंत्र को एक ऐसी शासन प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है जिसकी एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति होती है और जिसका एक आर्थिक आधार होता है। यह लोकतंत्र के राजनीतिक, सामाजिक और दैनिक व्यवहार के सारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मापदण्डों को सम्मिलित रूप में इसकी परिभाषा के अन्दर प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण के मूलभूत तत्व निम्नांकित हैं–

1) शासन व्यवस्था का संचालन जनता द्वारा होना चाहिए;

2) जनमत का सम्मान करना सरकार के लिए अनिवार्यतः होनी चाहिए;

3) सभी व्यक्ति समान हैं;

4) अपना हित–अहित समझने की क्षमता और विवेक सभी व्यक्तियों में होती है;

5) सरकार बहुमत की होनी चाहिए;

6) सरकार का सर्वप्रमुख और पुनीततम लक्ष्य व्यक्ति का विकास है;

7) सरकार की शक्ति का आधार जन–इच्छा होनी चाहिए;

8) सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह है;

9) राजनीतिक सत्ता जनता की धरोहर है;

10) व्यक्ति का विकास करना सरकार का चरम लक्ष्य है;

11) सरकार मर्यादित एवं सीमित है; और

12) विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जनता को अनिवार्यतः होनी चाहिए।

स्पष्ट है कि उदारवादी या शास्त्रीय दृष्टिकोण लोकतंत्र को एक ऐसी शासन–व्यवस्था और सामाजिक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसकी मनोवृत्ति एक विशेष कलेवर की होती है और जिसकी पुष्ट, दृढ़ और निश्चित आधारभूमि होती है। इसकी परिधि में राजनीतिक, सामाजिक एवं दैनिक आचरण के समस्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक मापदण्ड सम्मिलित हैं।

**विशिष्टवर्गीय दृष्टिकोण–** लोकतंत्र के परम्परावादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत इसे बहुसंख्यक का शासन माना गया है, किन्तु विशिष्टवर्गीय या अभिजनवादी दृष्टिकोण इसे अल्संख्यक का शासन बतलाता है। इसके अनुसार किसी भी देश में शासन सत्ता अन्ततः कुछ विशिष्ट जनों या एक विशिष्ट वर्ग के हाथों में निहित रहती है। **हैराल्ड डी0 लासवेल** ने स्पष्ट वादिता के साथ कहा है– ''सरकार हमेशा अल्पसंख्यक की होती है।'' वस्तुतः इनके अनुसार जनता का शासन तो मात्र एक धोखा है। समस्त जनता न तो कभी शासक रही है और न ही कभी शासन कर सकती है। मात्र कुछ निर्वाचित विशिष्टवर्गीय व्यक्ति ही शासन करने के योग्य समझे जाते हैं और केवल वही सत्ता तक पहुंच पाते हैं। इस विशिष्ट वर्ग को अभिजन, राजनीतिक वर्ग, शासक अभिजन, शक्ति अभिजन, सर्वोच्च नेतृत्व, आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इस अवधारणा की आधारभूत मान्यताएं निम्नवत् हैं–

1) सरकार 'जनता के द्वारा' तो नहीं हो सकती, 'हां जनता के लिए' अवश्य हो सकती है।

2) लोकतंत्र में शासन मात्र विशिष्ट वर्ग यानी अभिजन वर्ग के हाथ में ही होता है।

3) राजनीतिक निर्णय–निर्माण केवल विशिष्ट वर्ग द्वारा ही सम्पादित किया जाना सम्भव है, सामान्य जनता द्वारा नहीं, वस्तुतः यह कार्य तो विशिष्ट वर्ग का है ही।

4) यदि लोकतंत्र में विशिष्ट वर्ग का अस्तितव न हो, तो वह भीड़तंत्र में परिवर्तित हो जायेगा।

5) जनता निर्वाचन के द्वारा जिन लोगों को अपना प्रतिनिधि या शासक चुनती है, वे विशिष्ट वर्ग के ही होते हैं।

6) यह दृष्टिकोण प्रजातंत्र को विशिष्ट या अभिजन वर्गों के बीच सत्ता के लिए संघर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता।

**बहुलवादी दृष्टिकोण**

बहुलवादी दृष्टिकोण का सार सत्ता का विकेन्द्रीकरण है। **दुवर्जर** के अनुसार, ''यह निर्णय के विभिन्न केन्द्रों का होना'' है। रॉबर्ट ए0 डहल ने इसे 'बहुतंत्र (Polyarchy) की संज्ञा दी है, और लोवेन्स्टीन ने 'पालीक्रेसी' संज्ञा प्रदान की है। रॉबर्ट ए0 डहल के शब्दों में, ''सरकारी नीतियों का निर्धारण कोई एक वर्ग नहीं, बहुत से वर्ग करते हैं, जैसे व्यापारी, उद्योगपति, श्रमिक संघ, राजनीतिक मतदाता तथा स्वयंसेवी संस्थाएं।'' लिपसेट ने निम्न वर्गों का राजनीति में योगादन, मतदान पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव, राजनीतिक पर बुद्विजीवियों का प्रभाव, मजदूर संघों से सम्बद्ध राजनीतिक गतिविधियां, जैसे अनेक महत्वपूर्ण पक्षो ो बहुलवादी लोकतंत्र से सम्बद्ध बतलाया है। इन विद्यद्वानों ने, लोकतंत्र को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में चित्रित किया है जिसमें अनेक दल, दबाव गुट तथा हित समूह राजनीतिक क्रियाओं को प्रभावित करने के लिए प्रयासरत रहते हैं इसके अन्तर्गत प्रत्येक दल परस्पर एक–दूसरे की शक्तियों पर अंकुश का कार्य करते हैं। जहां तक राजीनतिक अथवा आर्थिक समस्याओं का सवाल है, कों एक वर्ग या व्यक्ति या समूह अकेले निर्णय नहीं लेता है। वस्तुतः बहुलवादी लोकतंत्र में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होता हैं अर्थात् निर्णय लेने के अनेक केन्द्र होते हैं। यह लोकतंत्र की विशुद्ध और ऐतिहासिक अवधारणा है। इस सिद्धानत की मान्यतानुसार, लोकतंत्र आपसी विचार–विनमय पर आधारित शासन व्यवस्था है।

इस सिद्धान्त के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं–

1) लोकतंत्र का आधार व्यक्तियों का संगठन है व्यक्ति नहीं।

2) इसमें राज्य का संगठन तथा राजनीतिक शक्ति का स्वरूप ऐसा होता है कि लोकतंत्र बहुलवादी रूप ग्रहण कर लेता है। इस लोकतंत्र के अनुसार शासन में प्रत्येक व्यक्ति भागीदार होता है।

3) इसके अन्तर्गत शक्ति केवल राज्य में निहित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसका निवास एवं विभाजन अनेक संस्थाओं में भी होना आवश्यक है।

4) बहुलवादी लोकतंत्र के अन्तर्गत शासन शक्ति सामान्यतः तीन भागों यानी विधायी, कार्यकारी, न्यायिक में विभक्त कर दी जाती है, इस विभाजन को शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त कहा जाता है।

5) सरकार एवं शक्तियों का विभाजन प्रादेशिक आधार पर भी होना अति आवश्यक है मात्र कार्यों के आधार पर नहीं। शक्तियों को विभिन्न क्षेत्रीय सरकारों में विभक्त कर दिया जाता है।

यह संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्ति के वितरण के रूप में देखा जा सकता है। जहां तक एकात्मक सरकार का प्रश्न है, उसमें यह विभाजन शक्ति के स्रोत केन्द्रीय सरकार के आलावा केन्द्र सरकार को सीमित करने और शासन में अधिक कुशलता लाने के उद्देश्य से शक्तियां स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को भी प्रदत्त कर दी जाती हैं।

6) न्यायालयों की निष्पक्षता और ईमानदारी को बनाये रखने के उद्देश्य से लोकतंत्रीय देशों की न्यायपालिका की स्वतंत्रता को आश्वस्त रखना आवश्यक है।

7) विकेन्द्रीकरण की दिशा में पिछली शताब्दी में स्वतंत्र नियामक आयोग एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सामने आये हैं। विशेष कार्यों को सम्पादित करने हेतु स्थापित ये आयोग कार्यपालिका से स्वतंत्र होते हैं। यही कारण है कि इन्हें 'स्वतंत्रता के द्वीप' की संज्ञा प्रदान की गयी है।

8) परिवार, चर्च, क्लब, विद्यालय की भांति राज्य को भी बहुलवाद एक संघ मानता है।

9) राज्य की शक्ति सीमित होनी चाहिए।

10) समूहों के साथ विचार–विमर्श के परिणाम के रूप में नीति निर्धारित होनी चाहिए।

11) शक्ति मात्र राज्य में ही केन्द्रित नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसे दूसरी संस्थाओं में भी विभाजित होना चाहिए।

12) बहुलवादी, दृष्टिकोण जनता को नीति निर्धारण में भाग लेने का अवसर प्रदान करने की सिफारिश करता किन्तु यह अवसर मात्र संगठनों के माध्यम से जनता तक पहुंचना चाहिए।

## मार्क्सवादी दृष्किोण

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की मान्यता है कि पाश्चात्य लोकतंत्रों में शासन मात्र साधन–सम्पन्न वर्ग के नियंत्रण में होने के चलते राज्य में शासनतंत्र का प्रयोग इसी वर्ग के हितों के पोषण के लिए किया जाता है। मार्क्स का मत है कि जिस राज्य में शासन व्यवस्था का संचालन मात्र साधन–सम्पन्न वर्ग के हित के रूप में किया जाता है, वह लोकतांत्रिक तो हो ही नहीं सकता। मार्क्सवादी दृष्टिकोण बतलाता है कि जब तक पूंजीवाद तथा निजी सम्पत्ति का अस्तित्व रहेगा, तब तक लोकतंत्र भी पूंजीवादी ही रहेगा और समर्थन भी उन्हीं का करेगा। सच्चे लोकतंत्र की स्थापना इसके अनुसार तभी सम्भव है जब पूंजीवादी राज्य का अन्त कर के सर्वहारा (श्रमिक) वर्ग की अधिनायकशाही की स्थापना की जाये। वास्तविकता तो यह है कि लोकतांत्रिक शासन

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

व्यवस्था उस शासन प्रणाली को कहा जाना चहिए, जहां इसका प्रयोग समस्त वर्गों के कल्याण और वर्गविहीन समाज की अवतारणा के लिए किया जाता है।

लोकतंत्र को मार्क्सवादी अवधारणा की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार हैं–

1) इसके अन्तर्गत एक ही राजनीतिक दल का अस्तित्व होता है जो विधिक एवं वास्तविक रूप से प्रभावी होता है। समस्त राजनीतिक गतिविधियों का चालक यही होता है।

2) श्रमिक (सर्वहारा) वर्ग की अधिनायकशाही पूंजीवादी लोकतंत्रों से उत्तम है।

3) लोकतंत्र शोषण का यंत्र है।

4) सैद्धान्तिक रूप में व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिविधि के समस्त पक्षों से सरकार राजनीतिक रूप से सम्बद्ध होती है।

5) पूंजीवदी लोकतंत्र का अन्त हो जाना ही श्रेयस्कर है।

6) जन–सम्पर्क के समस्त माध्यमों एवं न्यायपालिका के ऊपर सरकार द्वारा कठोर नियंत्रण का प्रयोग किया जाता है।

7) मार्क्सवादी लोकतंत्र के अन्तर्गत ऐसा सर्वाधिकारवादी शासन होता है जो लोकतंत्रीय आधार प्राप्त करने तथा शासन के लिए व्यापक जन–समर्थन जुटाने के उद्देश्य को प्राप्ति करने के लिए जन–सक्रियता को अपनाने पर विशेष बल देता है।

8) सैद्धान्तिक दृष्टि से मात्र एक सुस्पष्ट अवधारणा होती है जो उस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण राजनीतिक सक्रियता का विनियमन करती है।

9) लोकतंत्र केवल पूंजीवाद की रक्षा करने के उद्देश्य को अपने सम्मुख रखता है और इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से इसकी समस्त गतिविधियां संचालित होती हैं।

यहां यह चर्चा कर देना भी वांछनीय होगा कि मार्क्सवादी लोकतंत्र की पूर्व शर्तों के रूप में तीन संस्थागत व्यवस्थाओं को अपनाना अत्यावश्यक है। एक, उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व; दो, सम्पत्ति का समान वितरण और सभी व्यक्तियों को आर्थिक सुरक्षा; तथा तीन, साम्यवादी दल का समस्त सत्ता पर एकाधिकार।

अन्त में, यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि मार्क्सवादी लोकतंत्र को अधिनायकवाद के अधिक निकट माना जा सकता है। इसके प्रतिपादक इसे 'बहुजन हिताय' बतला कर 'एक उच्च

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

प्रकार का लोकतंत्र' मान सकते हैं किंतु सच यह है कि इसके द्वारा आर्थिक लोकतंत्र अस्तित्व में आ सकता है। वस्तुतः यह एकांगी है और अधूरे लोकतंत्र को जन्म देता है। बिना आर्थिक एवं राजनीतिक लोकतंत्र के सम्यक् समन्वय के सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हवाई किला बनाने जैसा है और यह मार्क्सवादी दृष्किोण के लोकतंत्र में सम्भव नहीं है।

**समाजवादी दृष्टिकोण–**

लोकतंत्र का समाजवादी दृष्टिकोण उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणाओं के समन्वय का परिणाम है।यह राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक समानता को मूलभूत तत्व मान कर चलता है। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को उदारवाद एवं मार्क्सवाद का संगम कहना औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। तृतीय विश्व के अधिकांश देशों को जहां राजीतिक स्वतंत्रता की सुविधा देनी पडी वहीं उन्हें आर्थिक असमानताओं को ज़यादा–से–ज्यादा घटाने का भागीरथ प्रयास भी करना पड़ा है। भारत ऐसे ही देशों की श्रंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक बार कहा था कि ''स्वतंत्रता तभी वास्तविक बनती है जब यह उन बहुसंख्यक लोगों के लिए, जो अत्यधिक पीड़ित एवं उपेक्षित रहे हैं, कुछ राहत ला सके तथा सुविधाएं देश के गरीब व्यक्ति तक पहुंच सकें।'

References

Khan, Saeed (25 January 2010). "There's no national language in India: Gujarat High Court". The Times of India. Retrieved 5 May 2014.

Press Trust of India (25 January 2010). "Hindi, not a national language: Court". *The Hindu*. Ahmedabad. Retrieved 23 December 2014.

"Preamble of the Constitution of India" (PDF). Ministry of Law & Justice. Retrieved 27 September 2017.

"Population Enumeration Data (Final Population)". Census of India. Retrieved 17 June2016.

"Human Development Report 2016 Summary" (PDF). The United Nations. Retrieved 21 March 2017.

Barrow, Ian J. (2003). "From Hindustan to India: Naming change in changing names". *South Asia: Journal of South Asian Studies*. **26** (1): 37–49.

Scharfe, Hartmut E. (2006), "Bharat", in Stanley Wolpert, *Encyclopedia of India*, 1 (A-D), Thomson Gale, pp. 143–144

Thapar, Romila (2002), The Penguin History of Early India: From the Origins to AD 1300, Allen Lane; Penguin Press, pp. 146–150

Sharma, Ram Sharan (1991), *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India*, Motilal Banarsidass Publ., pp. 119–132

*"India ranks fourth in global slavery survey". Times of India. 1 June 2016. Retrieved 21 November 2017.*

"India improves its ranking on corruption index". 27 January 2016. Retrieved 21 November 2017.

Barak, Aharon (2006), "Protecting the constitution and democracy", in Barak, Aharon, The judge in a democracy, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, p. 27,

Kelsen, Hans (October 1955). "Foundations of democracy". Ethics, special issue: Part 2: Foundations of Democracy. Chicago Journals. 66 (1): 1–101.